सिंगरेनी कोलियरीज कंपनी लिमिटेड

बनाम

वेमुगंती रामकृष्ण राव और अन्य

(सिविल अपील संख्या 7212-7213/2013)

29 अगस्त 2013

[टी एस ठाकुर और विक्रमजीत सेन, न्यायाधीशगण]

भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894

धारा 11-ए, स्पष्टीकरण, सवपठित धारा 4 और 6- पंचाट देने की परिसीमा स्थगन आदेश की प्रति प्राप्त करने में लगने वाला समय- यह अभिनिर्णित किया गया कि पंचाट को परिसीमा के भीतर लाने लिए इसे बाहर नहीं किया जा सकता है-- धारा 11-ए का स्पष्टीकरण अदालत ने जिस दौरान अधिग्रहण की कार्यवाही पर रोक लगा दी थी, उस अवधि को पंचाट पारित करने की निर्धारित दो साल की अवधि की गणना के लिये अपवर्जित करने की अनुमति देता है, लेकिन यह उस निर्णय या आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगने वाले समय को बाहर करने का प्रावधान नहीं करता है जिसके द्वारा स्थगन आदेश या तो दिया गया था अथवा निरस्त कर दिया गया था- परिसीमा अधिनियम की धारा 12 भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत् पारित होने वाले पंचाट कं संबंध में लागू

नहीं होती है। कैसस ऑमिसस के सिद्धांत को भी लागू नहीं किया जा सकता है- हस्तगत मामले, पारित पंचाट समाप्त हो चुका है- परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 12- निवर्चन विधि की व्याख्या- संदर्भ द्वारा संविधि निगमन की व्याख्या-कैसस ओमिसस।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना 30.08 1992 को अपीलार्थी सरकारी कंपनी के प्रयोजन के लिए निश्चित भूमि के अधिग्रहण हेतु जारी की गई थी। धारा 06 के अनुसार एक अंतिम घोषणा 02.03.1994 को जारी की, जिसकी वैधता को उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका में चार भूमि मालिकों-प्रत्यर्थीयों द्वारा चुनौती के रूप में दी गई। कलेक्टर ने 05.11.1999 को पंचाट पारित किया गया। प्रत्यर्थीयों स० 01 से 04 ने इस आधार पर पंचाट की वैधता को चुनौती देते हुए एक और रिट याचिका दायर की कि यह पंचाट धारा 11 ए अधिनियम के तहत् निर्धारित दो साल की अवधि से परे था। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने माना कि अधिनियम की धारा 11-ए के तहत प्रदान की गई सीमा की अवधि से परे पारित होने के कारण भूमि की कार्यवाही समाप्त हो गई थी। उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ ने उक्त की पुष्टि की।

हस्तगत अपीलों में, अपीलकर्ता के लिए यह तर्क दिया गया था कि उस आदेश की प्रति प्राप्त करने में लगने वाली अवधि जिसके द्वारा उच्च

न्यायालय ने पहले दिए गए स्थान को रद्द कर दिया था, को भी गणना से बाहर रखा जाना चाहिए और जब इसे अपवर्जित किया जाएगा तो धारा 11 ए के तहत पंचाट निर्धारित दो साल की बाहरी सीमा के भीतर आता हैं।

अपीलों को खारिज करते हुए न्यायालय द्वारा अभिनिर्णित किया गया किः-

1.1 भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 11ए के तहत् जो निर्णय या आदेश से स्थगन आदेश या तो स्वीकृत कर दिया गया था या निरस्त कर दिया गया था, की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगने वाला समय अपवर्जित करने का प्रावधान नहीं करता है। धारा 11-ए वैध होने के लिए निर्धारित करता है, धारा 6 के तहत् प्रकाशित घोषणा से पंचाट दो वर्ष की अवधि के भीतर दिया जाना चाहिये। धारा 11-ए का स्पष्टीकरण उस अवधि को अपवर्जित करने की अनुमति देता है जिसके दौरान अदालत ने पंचाट देने के लिए निर्धारित दो साल की अवधि की गणना के उद्देश्य से अधिग्रहण की कार्यवाही पर रोक लगा दी थी। मौजूदा मामले में घोषणा 02.03.1994 को प्रकाशित की गई थी जबकि पांचट 05.11.1999 को दिया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा 06.12.1995 को अंतरिम आदेश जारी किया गया और 28.07.1999 को रिट याचिका खारिज होने के साथ हटा दिया गया, आदेश 3 साल, 7 महीने और 22 दिनों की अवधि के लिए लागू रहा। उस अवधि को धारा 11ए के स्पष्टीकरण के आलोक में पंचाट देने के लिए

निर्धारित दो वर्ष की अवधि में जोड़ा जाएगा। हालाँकि, भले ही उक्त अवधि को पंचाट देने के लिए दिए गए समय में जोड़ दिया जाए, फिर भी यह निर्धारित अवधि से परे है [पैरा 8 और 15], (666- एफ-जी, एच 667-ए-सी; 672-सी-डी]

ए. आर. इंदिरा शरतचंद्र बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य (2011) 10 एससीसी 344 पद्म सुंदर राव (मृत्त) और अन्य बनाम टी०एन राज्य और अन्य 2002 (2) एससीआर 383 (2002) 3 एससीसी 533- विश्वास किया।

एन नरसिम्हैया और अन्य वी. कामताका राज्य और अन्य भारत संघ और अन्य 1996 (1) एससीआर 698 = (1996) 3 एससीसी 88 कर्नाटक राज्य बनाम डी.सी. नंजुदैया 1996 (5) पूरक एससीआर 222 = (1996) 10 एससीसी 619-खारिज कर दिया गया।

1.2 परिसीमा अधिनियम की धारा 12 का भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत एक पंचाट दिये जाने में कोई उपयोगिता नहीं है। परिसीमा अधिनियम अथवा भूमि अधिग्रहण अधिनियम में सक्षम प्रावधान के अभाव में परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के अंतर्निहित सिद्धांतों को धारा 11ए अधिनियम के संदर्भ में पंचाट की वैधता निर्धारित करने के लिए अवधि की गणना के लिए विचार में लेने के लिए कोई जगह नहीं है। [पैरा 15] [672-डीई]

रवि खुल्लर और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 2007 (4) एससीआर 598 (2007) 5 सेकंड 231- पर निर्भर ।

1.3 कैसस ऑमिसस की दलील का कोई फायदा नहीं हो सकता। पहले तो क्योंकि न्यायालय ने कैसस ओमिसस के सिद्धांत को लागू करते समय संपूर्ण अधिनियम और उसी से संबधित अंतर्निहित योजना को देखेगा। हस्तगत मामले में, संसद ने जहां भी उसका इरादा हो, विशेष रूप से आदेश की प्रति प्राप्त करने के लिए अपेक्षित समय के अपवर्जित करने का प्रावधान किया गया है। [धारा 28-ए का परंतुक], धारा 28-ए का परंतुक के समान धारा 11-ए की योजना में प्रावधान कें अभाव में स्थिति स्पष्ट करता है।द्वितीय, इस न्यायालय ने कई निर्णयों में माना है कि कैंसस ओमिसस नहीं प्रदान किया जाना चाहिए, सिवाय स्पष्ट आवश्यकता के मामले में और जब इसका कारण कानून के चारों कोनों के भीतर पाया जाता है।[पैरा 18-19] [672-एफ- जी 673 बी 674-एफ]

पदमा सुंदर राव (मृत) और अन्य बनाम टीएन राज्य और अन्य 2002 (2) एसी 383 (2002) 3 एससीसी 533 =इनकम टैक्स कमिश्नर सेंट्रल कलकत्ता बनाम नेशनल ताज ट्रेडस 1980 ए (2) एससीआर 268 =(1980) 1 एससीसी 370- पर निर्भर

भारत संघ बनाम धर्मेंद्र टेक्सटाइल प्रोसेसर्स 2008 (14) एससीआर 13 (2008) 13 एससीसी 369, नगर पालिका निगम बनाम कृषि उपज

मंडी समिति और अन्य 2008 (14) एससीआर 419 (2008) बी 12 एससीसी 364, संगीता सिंह बनाम भारत संघ 2005 (2))) सप्ल एससीआर 823 (2005) 7 एससीसी 484, केरल राज्य और अन्य वी पीढ़ी नी अवादन नायर एवं अन्य 2005 (1) सप्त एससीआर (2005) 5 एससीसी 561, यूओ ध् वी प्रियंवन वारण और अन्य 2008 (13) एससीआर 237 (2008) एसस 15 मतदन हाजी अब्राहम बनाम गुजरात राज्य (2004) क्रिएलजे 3860, सौ यूनिक ब्यूटाइल ट्यूब इंडस्ट्रीज प्रा. लिमिटेड वींपूर्वी फाइनेंशियल कॉर्पोरेशन और अन्य 2002 (5) सप्ला एससीआर 666 (2003) 2 एससीसी 455 यूओआई बनाम राजीव कुमार यूओआई बनाम बानी सिंह (2003) एससीसी (एलएस) 928, शिव शक्ति कॉप हाउसिंग सोसाइटी, नागपुर बनाम स्वराज डेवलपर्स और अन्य 2003 (3) एससीआर 762 (2003) 6 डी एससीसी 659, प्रकाश नाथ खन्ना और अन्य आयकर आयुक्त और अन्य 2004 (2) एससीआर 434 (2004) एससीसी 686, झारखंड राज्य और अन्य बनाम सिंह 2004 (6) सप्ल, एससीआर 651 (2005) 10 एससीसी 437 टुटफ सेफ्टी प्लास इंडस्ट्रीज बनाम बिक्री कर आयुक्त यूपी 2007 (8) एससीआर ई 860 = (2007) 7 सेकंड 242- पर आधारित

वैन्टवर्थ सिक्योरिटीज बनाम जोन्स (1980) एसी 1974 को यूरोप बनाम फर्स्ट पॉइस डिस्ट्रीब्यूशन (2000) 1 सभी ईआर 109- संदर्भितः

कानून की व्याख्या पर मैक्सवेल (12 वां संस्करण) पू. 33- संदर्भ-

1.5 वर्तमान मामले में धार 11-ए में कोई अस्पष्टता नहीं है और न ही कोई लोप है जिससे कैसस ओमिसस के सिद्धांत को उपयुक्त ठहराया जा सके, और उस मार्ग से फिर से धारा 11 ए में लिखना कि आदेश की प्रति प्राप्त करने में लगने वाले समय को अपवर्जित करने का प्रावधान है, जो कि वर्तमान में उक्त प्रावधान द्वारा प्रदान नहीं किया गया है। धारा 11 ए में धारा 28 ए के परन्तुक के समान प्रावधान का लोप है जो स्पष्ट रूप से कोई इरादा या अनजाने नहीं है, जो कि कैसस ओमिसस के सिद्धांत कर सार है। [पैरा 22] [677-एफ-एच]

1.6 उच्च न्यायालय का यह मानना बिल्कुल उचित था कि कलेक्टर/भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा दिया गया पंचाट गैर-स्थायी था और अधिनियम की धारा 11-ए के उल्लंघन के कारण अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त हो गई थी। हालांकि, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा दी गई घोषणा और कलेक्टर द्वारा शुरू की गई कार्यवाही केवल रिट याचिकाकर्ताओं प्रत्यर्थीयों के लिए समाप्त मानी जाएगी [पैरा 23] [678-ए-सी]

तमिलनाडु राज्य और अन्य वी. एल एन. कृष्णन और अन्य 1995 (4) पूरक एससीआर 663 1996 (1) एससीसी 250, कार्यकारी अभियंता, जल निगम सेंट्रल स्टोर्स डिवीजन, यूपी डी नंद जुयाल अलियाल मूसा राम

(मृतक) एलआरएस और अन्य द्वारा 1997 (2) एससीआर 1128 1997 (9) एसीसी 224 सेंटर बॉम्बे नगर निगम बनाम औद्योगिक विकास निवेश कंपनी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य 1996 (5) सप्ल एससीआर 551 1096 (11) एससीसी 501, नगर परिषद, अहमदनगर बनाम ई शाह हैदर बेग और अन्य 1999 (5) सप्ल। एससीआर 197-2000 (2) एससीसी 48, तेज कोर और अन्य बनाम पंजाब राज्य 2003 (4) सेकंड 48-प्रस्तुत

केस लाॅ सदर्भ

2002 (2) एससीआर 383 पैरा 8 पर निर्भर

1996 (5) सप्ता एससीआर 222 पैरा 8 को खारिज कर दिया गया

(2011) 10 सेकंड 344 पैरा 9 पर निर्भर था

1996 (1) एससीआर 698 पैरा 8 को खारिज कर दिया गया

1995 (4) पूरक, एमसीआर 663 ने पैरा 10

1997 (2) एससीआर 1128 ने पैरा 10 उद्धृत

1996 (5) पूरक एससीआर 551 पैरा 10 उद्धृत

1999 (5) पूरक एससीआर 197 पैरा 10

2003 (4) सेकंड 48 उद्धृत पैरा 10

2007 (4) एससीआर 598 पैरा 12

(2000) ऑल ईआर 109 का पैरा 18 पर आधारित है।

1980 (2) एससीआर 1974 पैरा 18 का हवाला दिया गया

1980 (2) एससीआर 268 पैरा 19

2008 (14) एससीआर 13 पर निर्भर है।

2008 (14) एससीआर 419 पैरा 20 को संदर्भित करता है

2005 (2) पूरक एससीआर 823 पैरा 20 में संदर्भित

2005 (1) पूरक एससीआर 426 पैरा 20 में संदर्भित

2008 (13) एससीआर 237 पैरा 20

(2004) क्रि०एल०जे 3860 में पैरा 20 संदर्भित

2002 (5) पूरक एससीआर 666 पैरा 20 में संदर्भित

2003 (3) एससीआर 762 पैरा 20 को संदर्भित करता है

2004 (2) एससीआर 434 पैरा 20 में संदर्भित

2004 (6) सप्ल. एससीआर पैरा 20 में संदर्भित

2007 (8) एससीआर 860 क पैरा 20 में संदर्भित

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार सिविल अपील संख्या 2013 की 7212-7213

आंध्र प्रदेश, हैदराबाद के उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 21.08.2009 पुनरीक्षण याचिका स० 2008 के 2901 व डब्लू ए स० 2006 के 936 से।

अल्ताफ अहमद, अनुराग माथुर, पी. परमेश्वरन अपीलकर्ता की ओर से,

श्रीधर पोटाराजू, गाईचांगपाठ गंगमेई, निशा पांडे, सी. के. सुचरिता, रूमी चंदा, प्रत्यर्थीयों की ओर से, इस न्यायालय द्वारा निर्णय पारित किया गया।

टी०एस ठाकुर, जे. 1. अर्जी स्वीकार।

2. ये अपीले हैदराबाद में आंध्र प्रदेश के उच्च न्यायालय द्वारा 2006 की रिट अपील संख्या 936 में पारित 7 सितंबर 2006 के एक फैसले और दिनांक 21 अगस्त 2009 को डब्लु०ए०एम०पी स० 2901/2008 में जो डब्लू०ए 936/2006 पारित आदेश से उत्पन्न हुई हैं, जो उच्च न्यायालय ने रिट अपील और अपीलकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि एल०ए०ओ/कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण ने भूमि अधिग्रहण की धारा 11-ए में निर्धारित दो साल की अवधि से परे पंचाट दिया है, अधिकारियों द्वारा शुरू की गई अधिग्रहण कार्यवाही समाप्त हो गई है।

3. अपीलकर्ता आंध्र प्रदेश राज्य में कोयला खनन कार्यों में लगी एक सरकारी कंपनी है। 30 अगस्त, 1992 की अधिसूचना के अनुसार भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4(1) के तहत जारी ई. गांव जल्लाराम, कामनपुर मंडल और करीमनगर जिलों में स्थित सर्वेक्षण संख्या 285 287 और 288 में 35 एकड़ और 09 जीटीएस भूमि की एक बड़ी मात्रा को अपीलार्थी कंपनी को लाभ के लिये अधिग्रहण के लिए अधिसूचित की गई। धारा 6 की शर्तों में एक अंतिम घोषणा 2 मार्च, 1994 को की गई थी, जिसकी वैधता को मुख्य रूप से 1995 में इस अपील में रिट याचिका संख्या 27/483 में चार मालिकों (पट्टादारों) द्वारा चुनौती प्राथमिक इस आधार पर दी गई कि धारा 6 के तहत घोषणा उद्देश्य के लिए निर्धारित परिसीमा अवधि से परे जारी की गई थी। रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा अंतरिम रोक के लिए एक आवेदन भी दायर किया गया था। जिसमें आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने 6 सितंबर, 1995 को अंतरिम रोक लगा दी थी। रिट याचिका को उच्च न्यायालय द्वारा अंततः 20 जुलाई, 1999 के एक फैसले और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। उक्त खारिज आदेश से व्यथित होकर प्रत्यर्थी ने 1999 की रिट अपील संख्या 1228 भी दायर की जिसमें विफल रहा और 13 अगस्त, 1999 को खण्ड पीठ बैंच द्वारा खारिज कर दिया गया।

4. रिट याचिका और उससे उत्पन्न अपील को खारिज करने के साथ, कलेक्टर ने 5 नवंबर, 1999 को भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11 के तहत एक पंचाट पारित किया। अपीलकर्ता कंपनी का मामला यह है कि उच्च न्यायालय का रूख करने वाले चार उत्तरदाताओं को छोड़कर सभी मालिकों ने सिविल कोर्ट में देय मुआवजे की मात्रा के संबंध में विवाद का संदर्भ मांगा, जिसमें वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश, मंथनी, जिला करीमनगर, आन्ध्र प्रदेश ने बेदखल मालिकों को संरचना, कुओं और उस पर खड़े पेड़ों के बड़े हुए मूल्य के अलावा 60,000/- रुपये प्रति एकड़ की दर से मुआवजा प्राप्त करने का हकदार माना। अपीलकर्ता कंपनी का दावा है कि उसने सिविल कोर्ट द्वारा दिए गए अवार्ड/ पंचाट के खिलाफ दायर अपील में मुआवजे के बढ़े हुए मूल्य का एक तिहाई जमा कर दिया है। अपीलकर्ता के अनुसार यह अपील उच्च न्यायालय में निपटारे हेतु लंबित है।

5. इसी बीच इस अपील में उत्तरदाताओं 1 से 4 तक जिन्होंने स्पष्ट रूप से मुआवजे की वृद्धि के लिए सिविल कोर्ट में कोई संदर्भ नहीं मांगा, उन्होंने रिट याचिका संख्या 1999 के 22875 दायर की, जिसमें एल०ए०ओ / कलेक्टर द्वारा दिए गए अवार्ड की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी गई कि यह अधिनियम की धारा 11-ए के तहत निर्धारित दो साल की अवधि से परे था। उस विवाद को उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश का समर्थन मिला, जिसके समक्ष मामले पर बहस की गई थी।

एकल न्यायाधीश ने माना कि अधिनियम की धारा 11-ए के तहत निर्धारित सीमा अवधि से परे पंचाट पारित होने के कारण, भूमि अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त हो गई थी।

6. विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले से व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय की खण्ड पीठ के समक्ष 2001 की रिट अपील संख्या 1315 और 2006 की 936 दायर की, जिसने आदेश दिनांक 7 सितंबर, 2006 के द्वारा एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की पुष्टि की और अपील को खारिज कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता कंपनी ने 2008 की पुनरीक्षण याचिका संख्या 2901 दायर की थी, जो विफल रही और खण्ड पीठ ने 21 अगस्त 2009 के अादेश द्वारा खारिज कर दी गई, जैसा कि पहले ही संकेत दिया गया है। वर्तमान अपीले उक्त दो निर्णयों और आदेशों पर प्रश्नगत करती है।

7. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को विस्तार से सुना है।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11-ए इस प्रकार हैरू

एस.11(ए) : वह अवधि जिसके भीतर पंचाट दिया जाएगाः-

(1) कलेक्टर घोषणा के प्रकाशन की तारीख से दो साल की अवधि के भीतर धारा 11 के तहत एक पंचाट देगा और यदि उस अवधि के भीतर कोई पंचाट नहीं दिया जाता है, तो भूमि अधिग्रहण की पूरी कार्यवाही समाप्त हो जाएगी:

बशर्ते ऐसे मामले में जहां उक्त घोषणा भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1984 (1984 का 68) के प्रारंभ होने से पहले प्रकाशित की गई है, पंचाट ऐसे प्रारंभ से दो साल की अवधि के भीतर किया जाएगा।

स्पष्टीकरण.-इस धारा में निर्दिष्ट दो वर्ष की अवधि की गणना करते समय, वह अवधि, जिसके दौरान उक्त घोषणा के अनुसरण में की जाने वाली कोई कार्रवाई या कार्यवाही किसी न्यायालय के आदेश द्वारा रोक दी जाती है, को बाहर रखा जाएगा।

8. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि एक वैध पंचाट होने के लिए, अधिनियम की धारा 6 के तहत घोषणा के प्रकाशन की तारीख से दो साल की अवधि के भीतर दिया जाना चाहिए। मौजूदा मामले में घोषणा 2 मार्च, 1994 को प्रकाशित की गई थी, जबकि पंचाट 5 नवंबर 1999 को दिया गया था। इसलिए, यह स्पष्ट रूप से दो साल से अधिक अवधि के बाद का था। उपरोक्त प्रावधानों के तहत अवधि निर्धारित है, फिर भी पंचाट को वैध माना जा सकता है, यदि वह उस अवधि को छोड़कर घोषणा के दो साल के भीतर था, जिसके दौरान उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी जमींदारों द्वारा दायर रिट याचिका में कार्यवाही पर रोक लगा दी थी. ऐसा इसलिए है क्योंकि धारा 11-ए (सुप्रा) का स्पष्टीकरण इसके अपवर्जित की अनुमति देता है। यह अवधि जिसके दौरान न्यायालय ने अधिग्रहण की कार्यवाही पर रोक लगा दी थी, पंचाट देने के लिए निर्धारित दो वर्ष की अवधि की गणना के उद्देश्य

से मौजूदा मामले में उच्च न्यायालय द्वारा 6 दिसंबर, 1995 को स्थगन का अंतरिम आदेश जारी किया गया था, जिसे अंततः 28 जुलाई 1999 को रिट याचिका के खारिज होने के साथ ही रद्द कर दिया गया। इसका मतलब यह है कि प्रतिबंधित आदेश 3 साल, 7 महीने और 22 दिनों की अवधि तक लागू रहा। उस अवधि को धारा 11-ए के स्पष्टीकरण के तहत् पंचाट देने के लिए निर्धारित दो वर्ष की अवधि में जोड़ना होगा, कठिनाई यह है कि भले ही उक्त अवधि को पंचाट देने के लिए अनुमत समय में जोड़ा जाता है, पंचाट दिया गया जो निर्धारित अवधि से परे है। इस प्रस्ताव का सामना करते हुए श्री अल्ताफ अहमद ने तर्क दिया कि उस आदेश की एक प्रति प्राप्त करने में लगने वाली अवधि जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने पहले दिए गए स्थगन कर दिया था, को भी विचार से बाहर रखा जाना चाहिए और जब इसे बाहर रखा जाएगा तो पंचाट के लिये धारा 11 के तहत निर्धारित दो साल की बाहरी सीमा के भीतर आ जायेगा, उक्त प्रस्तुतिकरण के समर्थन में श्री अल्ताफ अहमद द्वारा इस न्यायालय के एन नरसिम्हैया और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य व भारत संघ व अन्य 1996 3 एस सी सी 88 में निर्णय के आधार पर किया गया। यह भी प्रकट किया कि इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा पदमा सुंदर राव (मृत) और अन्य बनाम टी०एन राज्य और अन्य (2002) 3 एससीसी 533 में उक्त फैलाने को उलट दिया था, इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून को उसी समय से लागू किया गया था। श्री अल्ताफ अहमद के अनुसार, इसका अर्थ यह होगा कि

जिस तारीख को प्रश्नगत पंचाट दिया गया था, नरसिम्हैया के मामले (प्रा) में बताई गई कानूनी स्थिति प्रभावी होगी। अधिवक्ता के अनुसार, इसका मतलब यह भी होगा कि उच्च न्यायालय के आदेश की एक प्रति प्राप्त करने में लगने वाले समय को नरसिम्हैया के मामले (सुप्रा) में फैसले के आलोक में बाहर करना होगा।

9. प्रत्यर्थीयों की ओर से इसके विपरीत, विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के आर इंदिरा शरतचंद्र बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य (2011) 10 एससीसी 344 में फैसले पर भरोसा किया, यह तर्क देने के लिए कि इस न्यायालय ने इस विषय पर पिछले निर्णयों पर ध्यान देते हुए स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया था कि न्यायालय द्वारा हटाया गया स्थगन आदेश कलेक्टर/एलएओ द्वारा ऐसे आदेश की एक प्रति की डिलीवरी या प्राप्ति तक प्रभावी रहना चाहिए। यह प्रस्तुत किया गया कि एन. नरसिया के मामले में व्यक्त दृष्टिकोण का का मत काे राज्य बनाम डी.सी. नजुदैया (1996) 10 में पालन किया गया था, जिसे पद्मसुंदर राव के मामले में इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था, उक्त दो निर्णयों मे पारित मत पर निर्भरता रखने का कोई सवाल ही नहीं था। ए.एस. नायडू और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य (2010)2 एमसीसी 801 में व्यक्त विपरीत दृष्टिकोण, जो न केवल पदमा सुंदर राव के मामले में संविधान पीठ द्वारा सही पाया गया ब्लकि आर. इंदिरा सरतचन्द्र के मामले (प्रा) में भी,

उक्त निर्णयों के अनुपात ने अकेले ही सही कानूनी स्थिति बता दी, जो कि मौजूदा मामले पर पूरी तरह से लागू थी।

10. हमारी राय में, इसमें गहराई से जाना आवश्यक नहीं है, अपीलकर्ता की ओर से आग्रह किए गए विवाद के गुणों की गहराई से जांच करें जो पूरी तरह से इस न्यायालय के एन नरसिम्हैया (उपर वर्णित) के मामले के निर्णय में पारित सिद्धांत पर आधिरत है। एन नरसिम्हैया के मामले में लिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता की जांच इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा पद्मा सुंदर राव के मामले (सुप्रा) में खारिज कर दिया गया। यदि मामला यहीं रुका होता, तो हम इस प्रश्न की जांच कर सकते थे कि क्या एन नरसिम्हैया के मामले में निर्णय जो आदेश के समय से लागु हुआ था जिससे हस्तगत मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में अपीलकर्ता को कोई सहायता प्राप्त हो सकती है? मामले की परिस्थितियों ने उस अभ्यास को अनावश्यक बना दिया गया है, इस न्यायालय द्वारा आर. इंदिरा शरतचंद्र के मामले (सुप्रा) में दिया गया निर्णय, जो मामले को इस विषय पर किसी भी आगे की बहस से परे रखता है। इंदिरा शरतचंद्र के मामले (सुप्रा) में भी कलेक्टर द्वारा दिए गए पंचाट को इस आधार पर समर्थन देने की मांग की गई थी कि अधिनियम की धारा 11-ए के तहत निर्धारित दो साल की अवधि को गिना जाना चाहिए, न कि इससे फैसले की तारीख जिसके द्वारा अंतरिम स्थगन आदेश रद्द कर दिया गया था, यह दिनांक

जिस दिन उसकी एक प्रति कलेक्टर को प्रदान की गई थी। हाईकोर्ट ने एन नरसिम्हैया और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य व भारत संघ व अन्य 1996 3 एस सी सी 88; तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम एलएन कृष्णन और अन्य 1996 (1) एससीसी 250; कार्यकारी अभियंता, जल निगम सेंट्रल स्टोर्स डिवीजन, यूपीं बनाम सुरेशानन्द जुबान अलल मुसा राम (मृतक) विधिक वारिसान और अन्य द्वारा 1997 (9) एससीसी 224; ग्रेटर बी बॉम्बे नगर निगम बनाम औद्योगिक विकास निवेश कंपनी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य 1996 (11) एससीसी 501; नगर परिषद, अहमदनगर बनाम शाह हैदर बेग और अन्य 2000 (2) एससीसी 48; तेज कौर और अन्य बनाम पंजाब राज्य 2003 (4) एससीसी 48.

11. हालांकि, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण को उलट दिया, जिसमें कहा गया था कि धारा 11-ए उस व्याख्या को स्वीकार नहीं करती है जिसके द्वारा दो साल की अवधि उस तारीख से चलनी शुरू हो जाएगी जब रोक को हटाने वाले आदेश की एक प्रति न्यायालय द्वारा कलेक्टर को तामील करा दी जाएगी। इस न्यायालय ने कहाः-

> "10. धारा 11-ए में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि अदालत द्वारा पारित स्थगन आदेश, आदेश की प्रति की प्राप्ति तक प्रभावी रहता है।

आमतौर पर, उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियम पक्षकारों को निर्णय या आदेश की प्रति की मुफ्त में उपलब्ध नहीं कराते हैं। मुकदमें के पक्षकार प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन कर सकते हैं, जिसे संबंधित नियमों में निर्दिष्ट शर्तों को पूरा करने पर प्रदान किया जाना आवश्यक है। हालांकि, निर्णय या आदेश की प्रमाणित प्रति या उसकी तैयारी और वितरण के लिए आवेदन एफ करने के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई है। निःसंदेह, एक बार आवेदन सीमा की निर्धारित अवधि के भीतर किया जाता है, तो अपील या पुनरीक्षण दाखिल करने के लिए निर्धारित सीमा की अवधि की गणना में प्रतिलिपि की तैयारी और आपूर्ति में बिताया गया समय शामिल नहीं किया जाता है।"

12. उक्त के संबंध में हमारी राय में अपीलकर्ता की ओर से आग्रह किए गए विवाद का पूर्ण उत्तर है कि न केवल वह अवधि जिसके दौरान स्थगन का अंतरिम आदेश लागू रहता है, बल्कि स्थगन निरस्त करने की दिनांक से आदेश की प्रति प्राप्त करने में लगने वाला समय को भी अधिनियम की धारा 11-ए के तहत निर्धारित दो साल की अवधि की गणना के लिए बाहर रखा जाना चाहिए।

13. हमारे सामने पेश किए गये तर्को का एक और आयाम है, जो हमारी राय में रवि खुल्लर और अन्य बनाम यूनियन ऑफ (2007) 5 एससीसी 231 के मामले में इस न्यायालय के फैसले से समाप्त होता है। वह एक मामला था, जहां धारा 4, अधिनियम के तहत एक प्रारंभिक अधिसूचना 23 जनवरी, 1965 को जारी की गई थी और धारा 6, अधिनियम के तहत एक घोषणा 26 दिसंबर 1968 को प्रकाशित की गई थी (जो संसोधन अधिनियम, 1984 के लागू होने से पहले). धारा 11 ए की उपधारा 1 के संदर्भ में ऐसी घोषणा पर लागू होता है, जिसके भीतर संसोंधन के लागु होने से पंचाट दो वर्ष की अवधि देना आवश्यक है। जो गणना की, उसके अनुसार 28 सितंबर 1986 को या उससे पहले पंचाट दिया जाना चाहिये, जब दो की अवधि संशोधन अधिनियम, 1984 के लागु होने से समाप्त हो गयी। हालांकि, भूमि मालिक ने 12 सितंबर, 1986 को उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की थी जिसमें 18 सितंबर, 1986 को भूमि अधिग्रहण अधिकारी को पंचाट की घोषणा करने से रोकते हुए यथास्थिति बनाए रखने का आदेश दिया गया था। वह आदेश 13 फरवरी, 2003 तक लागू रहा। अंततः उच्च न्यायालय ने 13 फरवरी, 2003 को रिट याचिका खारिज कर दी। फैसले की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने के लिए एक आवेदन किया गया था, जो 27 फरवरी, 2003 को तैयार हो गया था। इसके बाद पंचाट, जिसके दौरान अंतरिम स्थगन आदेश प्रभावी था, उस अवधि हटाकर 1 मार्च, 2003 को दिया गया। पंचाट 18

फरवरी, 2003 को या उससे पहले सुनाया जाना चाहिए था। 01 मार्च, 2003 को सुनाए जाने के बाद, यह पंचाट धारा 11-ए के तहत निर्धारित अवधि से परे दिया गया था। भूमि अधिग्रहण अधिकारी की ओर से दलील दी गई कि एक सार्वजनिक पदाधिकारी को पंचाट की घोषणा सहित कोई भी कार्रवाई करने से पहले न्यायालय द्वारा पारित आदेश की सामग्री को देखना होगा और इसलिए, 14 फरवरी 2003 तथा 27 फरवरी, 2003 के बीच का समय को बाहर रखा जाना चाहिये ,जिसका मतलब है कि पंचाट को 4 मार्च 2003 तक किसी भी तारीख तक दिया जा सकता है। उस प्रस्ताव के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के प्रावधानों से तैयार किया गया था, जिसे भूमि अधिग्रहण अधिकारी के अनुसार भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11 ए के तहत सीमा की अवधि की गणना के लिए आवेदन करना चाहिए था। उस तर्क को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने कहाः-

> "54 .....भूमि अधिग्रहण कलेक्टर एक पांचट देने में परिसीमा अधिनियम के अर्थ में एक अदालत के रूप में कार्य नहीं करता है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम के प्रावधानों से यह भी स्पष्ट है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत अधिनियम की धारा 11-ए के तहत पंचाट देने के मामले में परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को कार्यवाही

पर लागू नहीं किया गया है। हालांकि, अधिनियम की धारा 11-ए एक परिसीमा अवधि प्रदान करती है जिसके भीतर कलेक्टर अपना पंचाट देगा। इसका स्पष्टीकरण यह भी प्रदान करता है उस अवधि को बाहर करने के लिए जिसके दौरान घोषणा के अनुसरण में की जाने वाली कोई भी कार्रवाई या कार्यवाही अदालत के आदेश द्वारा रोक दी जाती है। ऐसा प्रावधान होने के कारण, भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11-ए में परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के प्रावधान को निगमित करने की कोई गुंजाइश नहीं है। परिसीमा अधिनियम की धारा 12 का अनुप्रयोग भी उसमें सूचीबद्ध मामलों तक ही सीमित है। निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगने वाला समय शामिल नहीं है क्योंकि आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुए अपील/ रिवीजन/ पुनरीक्षण आदि में प्रमाणित प्रति दाखिल करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार किसी अदालत को अधिनियम की धारा 11-ए में फैसले और आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगने वाले समय को शामिल करने के प्रावधान को पढ़ने की अनुमति नहीं है। इसलिए, न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 11-ए के प्रावधानों के अनुसार पंचाट देने के लिए सीमा की अवधि की गणना

करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है, जिसे धारा 11-ए के स्पष्टीकरण के तहत बाहर रखा जा सकता है।"

14. इस न्यायालय ने अधिनियम की धारा 11-ए और धारा 28-ए के बीच तुलना की और दोनों प्रावधानों के बीच अंतर के आधार पर कहा:

"56. इस प्रकार यह देखा जाएगा कि विधायिका ने जहां भी आवश्यक समझा, परिसीमा अधिनियम की धारा 12 में शामिल नियम को स्पष्ट शब्दों में शामिल किया। इसने अधिनियम की धारा 28-ए में स्पष्ट रूप से ऐसा किया है, जबकि इसने जानबूझकर इस नियम को धारा 11-ए में शामिल नहीं किया है, जबकि स्पष्टीकरण के तहत समय को बाहर करने का प्रावधान किया गया है। इसलिए विधायिका का इरादा स्पष्ट है और न्यायालय को अधिनियम की धारा 11-ए में शब्दों को पढ़ने की अनुमति नहीं देता है ताकि वह परिसीमा अधिनियम की धारा 12 को भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11-ए में पढ़ने में सक्षम हो सके।"

15. हम उपरोक्त तर्क से सम्मानजनक सहमत हैं। धारा 11-ए की शर्तों में निर्णय या आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने में लगने वाले समय को शामिल नहीं किया गया है, जिसके द्वारा स्थगन आदेश या तो दिया गया था या रद्द किया गया था। परिसीमा अधिनियम की धारा 12

भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत पंचाट देने के लिए लागू नहीं होती है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11-ए या परिसीमा अधिनियम में किसी भी सक्षम प्रावधान के अभाव में, भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 11-ए के संदर्भ में अवधि की गणना करने या किसी पंचाट की वैधता निर्धारित करने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 12 के अंतर्निहित सिद्धांतों को निगमित करने की गुंजाइश नहीं है।

16. श्री अल्ताफ अहमद ने यह तर्क देने का कमजोर प्रयास किया कि न्यायालय द्वारा पारित आदेश की एक प्रति प्राप्त करने में लगने वाले समय को छोड़कर धारा 11-ए में एक विशिष्ट प्रावधान का लोप कैसस ओमिसस था और यह न्यायालय उक्त प्रावधान की व्याख्या करते समय संसद की अनपेक्षित लोप की आपूर्ति कर सकता था। हमारे विचार में, उस विवाद में कोई सार नहीं है। हम एक से अधिक कारणों से ऐसा कहते हैं। सबसे पहले, क्योंकि कैसस ओमिसस के सिद्धांत को लागू करते समय न्यायालय को संपूर्ण अधिनियम और उसमें अंतर्निहित योजना को देखना होगा। हस्तगत मामले में, हमने पाया है कि संसद ने, जहां भी उसका इरादा हो, विशेष रूप से आदेश की एक प्रति प्राप्त करने के लिए आवश्यक समय के अपवर्जित का प्रावधान किया है। उदाहरण के लिए, धारा 28ए के तहत, जो न्यायालय के फैसले के आधार पर मुआवजे की राशि के पुनर्निर्धारण का प्रावधान करती है, पीड़ित पक्ष फैसले की तारीख से तीन

महीने के भीतर कलेक्टर को एक लिखित आवेदन देने का हकदार है। न्यायालय या कलेक्टर को न्यायालय द्वारा दी गई राशि के आधार पर उसे देय मुआवजे की राशि निर्धारित करने की आवश्यकता होती है। धारा 28ए के प्रावधान में विशेष रूप से तीन महीने की अवधि की गणना करते समय पंचाट की एक प्रति प्राप्त करने के लिए आवश्यक समय को शामिल नहीं किया गया है, जिसके भीतर कलेक्टर को आवेदन किया जाएगा। इस प्रकार है किः-

> "28ए. न्यायालय के निर्णय के आधार पर मुआवजे की राशि का पुनर्निर्धारण।- (1) जहां इस भाग के तहत एक पंचाट में, अदालत आवेदक को कलेक्टर द्वारा मुआवजे की राशि से अधिक किसी भी राशि की अनुमति देती है। धारा 11, धारा 4, उप-धारा (1) के तहत एक ही अधिसूचना के अंतर्गत आने वाली अन्य सभी भूमि में रुचि रखने वाले व्यक्ति और जो कलेक्टर के पंचाट से व्यथित हैं, भले ही उन्होंने कलेक्टर को आवेदन नहीं किया हो धारा 18 के तहत, न्यायालय के फैसले की तारीख से तीन महीने के भीतर कलेक्टर को लिखित आवेदन द्वारा यह अपेक्षा की जाती है कि उन्हें देय मुआवजे की राशि न्यायालय द्वारा

दिए गए मुआवजे की राशि के आधार पर फिर से निर्धारित की जा सकती है:

बशर्ते कि तीन महीने की अवधि की गणना करने में, जिसके भीतर इस उप-धारा के तहत कलेक्टर को आवेदन किया जाएगा, जिस दिन पंचाट सुनाया गया था और पंचाट की एक प्रति प्राप्त करने के लिए अपेक्षित समय को बाहर रखा जाएगा।"

(जोर दिया गया)

17. धारा 11-ए की योजना में धारा 28ए (सुप्रा) के प्रावधान के अनुरूप प्रावधान की अनुपस्थिति इस तर्क के विरुद्ध है कि धारा 11-ए में ऐसे प्रावधान का लोप अनपेक्षित है जिसे न्यायालय द्वारा कैसस ओमिसस के सिद्धांत का सहारा लिया जा सकता है।

18. दूसरे, क्योंकि कैसस ओमिसस के सिद्धांत की उपयुक्ता के संबंध में कानूनी स्थिति इस न्यायालय के साथ-साथ इंग्लैंड के न्यायालयों के निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला द्वारा तय की जाती है। वेंटवर्थ सिक्योरिटीज बनाम जोन्स (1980) एसी 1974 में लॉर्ड डिप्लॉक ने उस सिद्धांत को पुनर्जीवित किया जो बड़ी आलोचना के अधीन था, इसके अभ्यास के लिए तीन शर्तें तैयार करके, अर्थात्, (1) प्रश्न में क़ानून या प्रावधान का इच्छित उद्देश्य क्या है; (2) क्या यह असावधानी के कारण था कि ड्राफ्ट्समैन और

संसद प्रश्नगत प्रावधान में उस उद्देश्य को प्रभावी करने में विफल रहे थे; और (3) उस प्रावधान का सार क्या होगा जो संसद ने बनाया होगा, हालांकि जरूरी नहीं कि संसद ने सटीक शब्दों का इस्तेमाल किया हो, अगर विधेयक में त्रुटि देखी गई होती। इंको यूरोप बनाम फर्स्ट चॉइस डिस्ट्रीब्यूशन (2000) 1 ऑल ईआर 109 में में उपरोक्त शर्तों को मंजूरी देते हुए आगे कहा कि नियम में कुछ अपवाद है कि शक्ति का प्रयोग तब नहीं किया जाएगा जब परिवर्तन दूरगामी हो या जब विचाराधीन कानून के तहत कानून के तौर पर सख्त निवर्चन की आवश्यकता हो।

19. इस देश में प्रचलित कानूनी स्थिति इंग्लैंड में बताए गए कानून से बहुत अलग नहीं है। इस न्यायालय ने कई निर्णयों में कहा है कि स्पष्ट आवश्यकता के मामले को छोड़कर और जब इसका कारण क़ानून के चारों कोनों के भीतर पाया जाता है, तब तक कैसस ओमिसस को प्रयुक्त नहीं की जा सकता है। इस सिद्धांत पर पहली बार आयकर आयुक्त, मध्य कलकत्ता बनाम नेशनल ताज ट्रेडस (1980) 1 एससीसी 370 के मामले में न्यायमूर्ति वी०डी तुलजापुरकर द्वारा चर्चा की गई थी। इस न्यायालय द्वारा क़ानून की व्याख्या (12 वां संस्करण) पृष्ठ पर मैक्सवेल से व्याख्यात्मक सहायता ली गई थी। 33 और 47. न्यायालय ने कहा:

> "10. निवर्चन के दो सिद्धांत-एक कैसस ओमिसस से संबंधित और दूसरा क़ानून को समग्र रूप से पढ़ने के संबंध

में-अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होते हैं। पूर्व के संबंध में कानून का निम्नलिखित कथन मैक्सवेल ऑन इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टैट्यूट्स (12 वें संस्करण) में पृष्ठ 33 पर दिखाई देता है:

लोपों का अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए- "यह शाब्दिक अर्थ के सामान्य नियम का एक परिणाम है कि किसी क़ानून में कुछ भी जोड़ा या हटाया नहीं जा सकता है जब तक कि इस अनुमान को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त आधार न हों कि विधायिका ने कुछ ऐसा करने का इरादा किया था जिसे व्यक्त करना छोड़ दिया गया था। लॉर्ड मर्सी ने कहा: 'संसद के अधिनियम में उन शब्दों को पढ़ना एक मजबूत बात है जो वहां नहीं हैं, और स्पष्ट आवश्यकता के अभाव में ऐसा करना एक गलत बात है। "हम हकदार नहीं हैं,' लॉर्ड्स लोरबर्न एलसी ने कहा, 'संसद के अधिनियम में शब्दों को पढ़ने के लिए जब तक कि इसके लिए स्पष्ट कारण अधिनियम के चारों कोनों के भीतर नहीं पाया जाता है। 'किसी क़ानून में प्रावधान न किए गए मामले को केवल इसलिए नहीं निपटाया जाना चाहिए क्योंकि ऐसा कोई

अच्छा कारण नहीं दिखता कि इसे क्यों छोड़ा जाना चाहिए था, और परिणामस्वरूप लोप अनजाने में हुई है।

बाद वाले सिद्धांत के संबंध में कानून का निम्नलिखित कथन मैक्सवेल में पृष्ठ 47 पर दिखाई देता है:

एक क़ानून को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए- "लिंकन कॉलेज (1595) 3 सी ओआईपी 58 के मामले में यह निर्णय लिया गया था कि संसद के एक अधिनियम के अच्छे व्याख्याता को 'सभी भागों पर एक साथ निर्वचन करना चाहिए, न कि केवल एक भाग का ही। 'किसी क़ानून के प्रत्येक खंड को 'संदर्भ और अधिनियम के अन्य खंडों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, ताकि जहां तक संभव हो, पूरे क़ानून का एक सुसंगत अधिनियम बनाया जा सके। '(लॉर्ड डेवी के अनुसार कनाडा शुगर रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड बनाम आर 1898 एसी 735)

दूसरे शब्दों में, पहले सिद्धांत के तहत स्पष्ट आवश्यकता के मामले को छोड़कर और जब इसका कारण क़ानून के चारों कोनों में पाया जाता है, तब तक न्यायालय द्वारा एक कैसस ऑमिसस प्रदान नहीं किया जा सकता है, लेकिन साथ ही एक कैसस ऑमिसस आसानी से अनुमान

नहीं लगाना दिया जाना चाहिए आैर उस उद्देश्य के लिए किसी क़ानून या धारा के सभी हिस्सों को एक साथ समझा जाना चाहिए और धारा के प्रत्येक खंड को संदर्भ और उसके अन्य खंडों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए ताकि किसी विशेष प्रावधान पर रखा जाने वाला निर्वचन एक सुसंगत अधिनियम बन सके। संपूर्ण क़ानून का यह तब और अधिक होगा जब किसी विशेष खंड का शाब्दिक निवर्चन स्पष्ट रूप से बेतुके या असंगत परिणाम देता है जो विधायिका द्वारा अपेक्षित नहीं हो सकता है। आर्टेमिउ बनाम प्रोकोपिउ [1966] 1 क्यूबी 878 में डैनकवर्ट्स एलजे ने कहा, "अनुचित परिणाम उत्पन्न करने का इरादा", "यदि कोई अन्य निर्माण उपलब्ध है तो इसे किसी क़ानून में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।" जहां शब्दों को शाब्दिक रूप से लागू करना "कानून के स्पष्ट इरादे को हरा देगा और पूरी तरह से अनुचित परिणाम देगा" हमें "शब्दों के साथ कुछ हिंसा करनी होगी" और इसलिए उस स्पष्ट इरादे को प्राप्त करना होगा और एक तर्कसंगत निर्वचन करना होगा, (लॉर्ड रीड के अनुसार ल्यूक बनाम आईआरसी-1968 एसी 557 जहां पृष्ठ 577 पर उन्होंने यह भी कहा: "यह कोई नई समस्या नहीं है, हालांकि प्रारूपण का हमारा मानक ऐसा है

कि यह शायद ही कभी उभरता है। इन सिद्धांतों के प्रकाश में हमें उप-धारा (2)(बी) का धारा 33 बी के संदर्भ और अन्य खंडों के संदर्भ में अर्थ लगाना होगा।"

20. अरिजीत पसायत, जे. ने पद्मसुंदर राव बनाम तमिलनाडु राज्य 2 (2002) 3 एससीसी 533 में उपरोक्त पर शब्दशः भरोसा किया है, भारत संघ बनाम धर्मेंद्र टेक्सटाइल प्रोसेसर्स (2008) 13 एससीसी 369, नगर पालिका निगम बनाम कृषि उपज मंडी समिति और अन्य (2008) 12 एससीसी 364, संगीता सिंह बनाम भारत संघ (2005) 7 एससीसी 484, केरल राज्य और अन्य बनाम पीवी नीलकंदन नायर और अन्य (2005) 5 एससीसी 561, यूओआई बनाम प्रियंकन शरण और अन्य (2008) 9 एससीसी 1, मौलवी हुसैन हाजी अब्राहम उमरजी बनाम गुजरात राज्य (2004) क्रि०एल०जे 3860, यूनिक ब्यूटाइल ट्यूब इंडस्ट्रीज प्रा.लिमिटेड बनाम यूपी वित्तीय निगम और अन्य (2003) 2 एससीसी 455 , यूओआई बनाम राजीव कुमार यूओआई बनाम बानी सिंह (2003) एससीसी (एलएस) 928, शिव शक्ति कॉप हाउसिंग सोसायटी, नागपुर बनाम स्वराज डेवलपर्स और अन्य (2003) 6 एससीसी 659, प्रकाश नाथ खन्ना और अन्य आयकर आयुक्त और अन्य (2004) 9 एससीसी 686, झारखंड राज्य एवं अन्य बनाम गोविंद सिंह (2005) 10 एससीसी 437, ट्रुटफ सेफ्टी ग्लास इंडस्ट्रीज बनाम बिक्री कर आयुक्त, यूपी (2007) 7 एससीसी 242।

21. पद्म सुंदर राव (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय ने जांच की कि क्या भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 6(1) की व्याख्या करते समय कैसस ओमिसस के सिद्धांत को लागू किया जा सकता है ताकि आदेश की प्रति कलेक्टर को तामील होने के लिए लगने वाले समय को बाहर रखा जा सके। इस विवाद को खारिज करते हुए इस न्यायालय ने कहा:

> "12. न्यायालय ऐसे वैधानिक प्रावधान में कुछ भी नहीं पढ़ सकता जो स्पष्ट और असंदेहस्पद हो। क़ानून विधायिका का एक आदेश है। किसी क़ानून में प्रयुक्त भाषा विधान मंशा का निर्धारक कारक है। निर्वचन का पहला और प्राथमिक नियम यह है कि विधान का आशय विधायिका द्वारा प्रयुक्त शब्दों में ही पाया जाना चाहिए। सवाल यह नहीं है कि क्या माना जा सकता है और क्या इरादा किया गया है बल्कि सवाल यह है कि क्या कहा गया है।
>
> 14. किसी प्रावधान की व्याख्या करते समय न्यायालय केवल कानून की व्याख्या करता है, उस पर कानून नहीं बना सकता। यदि कानून के किसी प्रावधान का दुरुपयोग किया जाता है और कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जाता है, तो यह विधायिका पर निर्भर है कि यदि आवश्यक

समझा जाए तो वह इसमें संशोधन, संशोधन या निरस्त कर सकती है।"

22. हस्तगत मामले में कोई अस्पष्टता नहीं है और न ही हमें धारा 11-ए में कोई स्पष्ट चूक दिखाई देती है जो कैसस ओमिसस के सिद्धांत के उपयुक्ता को उचित ठहराती है और उस मार्ग से धारा 11-ए को फिर से लिखती है, जिसमें आदेश की प्रति प्राप्त करने में लगने वाले समय को शामिल नहीं किया जाता है, वर्तमान में उक्त प्रावधान द्वारा प्रदान नहीं किया गया है। धारा 28ए के प्रावधान के समान धारा 11-ए के तहत एक प्रावधान का लोप स्पष्ट रूप से अनपेक्षित या अनजाने में नहीं है जो कि कैसस ओमिसस के सिद्धांत का सार है। इसलिए, हमें श्री अल्ताफ अहमद द्वारा दिए गए तर्क को खारिज करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है।

23. उपरोक्त परिस्थितियों में उच्च न्यायालय का यह मानना पूरी तरह से उचित था कि कलेक्टर/भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा दिया गया पंचाट गैर-स्थायी था और अधिनियम की धारा 11-ए के उल्लंघन के कारण अधिग्रहण की कार्यवाही समाप्त हो गई थी। हालाँकि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि उच्च न्यायालय द्वारा दी गई घोषणा और कलेक्टर द्वारा शुरू की गई कार्यवाही केवल रिट याचिकाकर्ताओं-प्रत्यर्थीयों के लिए ही समाप्त मानी जाएगी। उन टिप्पणियों के साथ, ये अपीलें विफल हो जाती हैं और खारिज

कर दी जाती हैं, लेकिन ऐसी परिस्थितियों में खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपीलें खारिज कर दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायत से अनुवादक न्यायिक अधिकारी प्रवीण चौधरी आर०जे०एस द्वारा किया गया है।

अस्वीकारणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमीत उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंग्रजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रजी संस्करण ही मान्य होगा।